त्रासदी... माई फुट

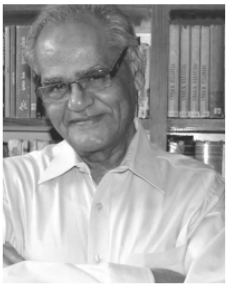

रमेश उपाध्याय

त्रासदी... माई फुट

नूर भोपाली का पूरा परिवार यूनियन कार्बाइड के कारखाने से निकली मिक गैस के जहरीले असर से मारा गया था। बूढ़ी माँ, भली-चंगी पत्नी, एक बेटा और दो बेटियाँ - सब उसी रात मारे गये थे, जिस रात दूसरे हजारों लोग या तो तत्काल मारे गये थे या

https://www.hindiadda.com/trassadi-my-foot/

घायल-अपाहिज होकर बाद में मरे थे और कई पिछले पंद्रह सालों में लगातार मरते रहे थे। नूर भोपाली बच गये थे, तो केवल इस कारण कि वे उस रात भोपाल में नहीं थे, किसी काम से इंदौर गये हुए थे।

वे मुझे अस्सी या इक्यासी के साल भोपाल में हुए एक साहित्यिक कार्यक्रम में मिले थे, जिसमें मैंने अपनी कहानी पढ़ी थी और उन्होंने अपनी गजलें। लंबे कद, छरहरे बदन, गोरे रंग, सुंदर चेहरे और हँसमुख स्वभाव वाले नूर भोपाली से मेरी दोस्ती पहली मुलाकात में ही हो गयी थी। कार्यक्रम के बाद वे मुझे आग्रहपूर्वक अपने घर ले गये थे, जो यूनियन कार्बाइड के कारखाने के पास की एक घनी बस्ती में था। उन्होंने अपनी माँ, पत्नी और बच्चों से मुझे मिलवाया था, अच्छी व्हिस्की पिलायी थी, उम्दा खाना खिलाया था, देश-दुनिया के बारे में बड़ी समझदारी की बातें की थीं और मेरे मन पर एक सुशिक्षित, विचारवान, उदार और प्रगतिशील व्यक्तित्व के साथ अपने अच्छे कवित्व की छाप छोड़ी थी।

नूर भोपाली सिर्फ शायरी नहीं, एक बैंक में नौकरी भी करते थे। अच्छा वेतन पाते थे। अच्छा खाते-पीते थे। बच्चों को अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूल में अच्छी शिक्षा दिला रहे थे। हमारी पहली मुलाकात के कुछ ही दिन पहले उन्होंने अपने लिए नयी मोटरसाइकिल खरीदी थी। अपने घर पर खाना खिलाकर वे उसी पर बिठाकर मुझे उस होटल तक पहुँचा गये थे, जहाँ मैं ठहरा हुआ था।

गैस-कांड में अपने पूरे परिवार के मारे जाने के बाद वे उसके सदमे से विक्षिप्त हो गये थे। लेकिन कुछ महीने अस्पताल में रहकर ठीक भी हो गये थे। यूनियन कार्बाइड के कारखाने के पास वाली बस्ती में रहना छोड़कर बैंक अधिकारियों के लिए बनी एक नयी कॉलोनी में फ्लैट लेकर रहने लगे थे। अपने एक भतीजे को सपरिवार उन्होंने अपने पास रख लिया था और उसी के परिवार को अपना परिवार मानने लगे थे।

भोपाल के साहित्यिक मित्रों से मुझे उनके बारे में ये सारी सूचनाएँ मिलती रही थीं। जब वे अस्पताल में थे, कई बार मेरे मन में आया कि भोपाल जाकर उन्हें देख आऊँ। लेकिन समझ में नहीं आया कि मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा। विक्षिप्त नूर मुझे पहचानेंगे भी या नहीं, पहचान भी गये, तो मैं उनसे क्या कहूँगा, क्या कहकर उन्हें सांत्वना दूँगा। फिर जब पता चला कि वे ठीक हो गये हैं, नौकरी पर जाने लगे हैं, नयी जगह जाकर अपने फ्लैट में रहने लगे हैं और उनका भतीजा उनकी अच्छी देखभाल कर रहा है, तो मैं निश्चिंत-सा हो गया था। मैंने उन्हें पत्र लिखा था, लेकिन

उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया था। मुझे मेरे मित्रों ने यह भी बताया था कि नूर ने अब साहित्य से संन्यास ले लिया है। पहले हिंदी या उर्दू साहित्य का कोई भी आयोजन हो, वे बिना बुलाये भी लोगों को सुनने पहुँच जाते थे, लेकिन अब गजल पढ़ने के लिए बुलाये जाने पर भी कहीं नहीं जाते। साहित्यिक मित्रों से मिलना-जुलना भी उन्होंने बंद कर दिया है।

लेकिन मुझे गैस-कांड, मुआवजों के लिए होने वाली मुकदमेबाजी, गैस-पीड़ितों की दुर्दशा और यूनियन काबाईड के खिलाफ किये जा रहे आंदोलनों से संबंधित लेख या समाचार पढ़ने-सुनने पर नूर की याद जरूर आती थी। इसलिए गैस-कांड के लगभग पंद्रह साल बाद एक साहित्यिक कार्यक्रम में फिर भोपाल जाना हुआ, तो मैंने निश्चय किया कि और किसी से मिलूँ या न मिलूँ, नूर से जरूर मिलूँगा। एक दिन के लिए ही सही, उन्होंने जो प्यार और अपनापन मुझे दिया था, उसे मैं भूला नहीं था।

कार्यक्रम में उपस्थित कुछ लोगों से मैंने नूर भोपाली के बारे में पूछताछ की, तो पाया कि नये लेखक तो उनके बारे में कुछ जानते ही नहीं हैं, पुराने लेखक भी उनकी कोई खोज-खबर नहीं रखते हैं। मैंने बैंक में काम करने वाले एक लेखक से पूछा, तो पता चला कि वह अपने ब्रांच मैनेजर नूर मुहम्मद साहब को जानता है, जिनका पूरा परिवार गैस-कांड में मारा गया था। विजय प्रताप नामक उस लेखक ने नूर का हुलिया बताकर पूछा, "क्या वही नूर भोपाली हैं?'

"जी हाँ, वही।" मैंने कहा, "मुझे उनसे मिलना है।"

विजय उम्र में मुझसे छोटा था, पहली ही बार मुझे मिला था, लेकिन मुझे जानता था। शायद यह सोचकर कि मैं दिल्ली से आया हूँ, दिल्ली के संपादकों और प्रकाशकों को जानता हूँ और परिचय हो जाने पर किसी दिन उसके काम आ सकता हूँ, वह मेरे प्रति कुछ अधिक आदर और आत्मीयता प्रकट कर रहा था। मेरे कहे बिना ही वह शाम को मुझे नूर के पास ले जाने को तैयार हो गया। उसने कहा, "कार्यक्रम के बाद आप होटल जाकर थोड़ा आराम कर लें, मैं शाम को छह बजे गाड़ी लेकर आ जाऊँगा और आपको उनके घर ले चलूँगा।"

शाम को ठीक छह बजे विजय ने मेरे कमरे के दरवाजे पर दस्तक दी और मुझे साथ लेकर चल पड़ा। अपनी मारुति कार में बैठते-बैठते उसने यह भी बता दिया कि वह बैंक में सहायक शाखा प्रबंधक है और कार उसने कुछ महीने पहले ही खरीदी है। फिर वह अपनी साहित्यिक उपलब्धियाँ बताने लगा। मध्यप्रदेश सरकार से प्राप्त एक

पुरस्कार का और आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से तकरीबन हर महीने होने वाले अपनी कविताओं के प्रसारण का जिक्र उसने काफी जोरदार ढंग से किया।

मैं हाँ-हूँ करता रहा, तो वह समझ गया कि मैं उससे प्रभावित नहीं हो रहा हूँ। तब उसने विषय बदलते हुए मुझसे पूछा, "आप नूर मुहम्मद साहब को कब से और कैसे जानते हैं?'

मैंने अपनी पिछली भोपाल यात्रा और नूर भोपाली से हुई भेंट के बारे में बताया।

"लेकिन आप तो, सर, हिंदी के लेखक हैं और वे उर्दू के!"

"तो क्या हुआ?' मैं उसकी बात का मतलब नहीं समझा।

"वैसे मेरे भी कई दोस्त मुसलमान हैं।"

"ओह!" अब उसका अभिप्राय मेरी समझ में आया। मैंने जरा तेज-तुर्श आवाज में कहा, "हिंदी को हिंदुओं की और उर्दू को मुसलमानों की भाषा समझना ठीक नहीं है, विजय जी! यह तो भाषा और साहित्य के बारे में बड़ा ही सांप्रदायिक दृष्टिकोण है।"

"सॉरी, सर, मेरा मतलब यह नहीं था।" विजय ने कहा।

मैं इस पर चुप रहा, तो वह दूसरी बातें करने लगा।

"नूर साहब से आप पहली भेंट के बाद फिर कभी नहीं मिले हैं न?'

"जी।"

"सुना है, वे अच्छे शायर हुआ करते थे। उस हादसे के बाद उन्होंने लिखना-पढ़ना छोड़ दिया। मैंने यह भी सुना है कि फिल्म इंडस्ट्री के लोग उनसे फिल्मों के लिए गाने लिखवाना चाहते थे। काफी बड़े ऑफर थे। नूर साहब ने सब ठुकरा दिये। आप क्या सोचते हैं उनका ऐसा करना ठीक था?'

"मैं यह कैसे बता सकता हूँ? पता नहीं, उनकी क्या परिस्थिति या मनःस्थिति रही होगी।"

"मैं मनःस्थिति की ही बात कर रहा हूँ, सर! सुना है, उस हादसे के बाद नूर साहब कुछ समय के लिए पागल हो गये थे।"

"किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के साथ ऐसा हो सकता है।"

"लेकिन, सर, नूर साहब को अगर फिल्मों में बढ़िया चांस मिल रहा था, तो उन्हें छोड़ना नहीं चाहिए था। उससे उनको नाम और पैसा तो मिलता ही, उस हादसे को भुलाने में मदद भी मिलती। उस हादसे में कई लोगों के परिवार खत्म हो गये, लेकिन फिर से उन्होंने अपने घर बसा लिये। लोगों को जिंदा तो रहना ही होता है न, सर!"

"हाँ, लेकिन सब लोग एक जैसे नहीं होते।"

"आपको मालूम है, सर, नूर साहब ने मुआवजा भी नहीं माँगा! कह दिया कि मैं अपनी माँ और बीवी-बच्चों की जान के बदले चंद सिक्के नहीं लूँगा। सुना है, उनका यह बयान अखबारों में भी छपा था। लेकिन, सर, अपन को तो यह बात कुछ जमी नहीं। यूनियन कार्बाइड ने जो किया, उसकी कोई और सजा तो उसे मिलनी नहीं थी। मुआवजा लेकर इतनी-सी सजा भी आप उसको नहीं देना चाहते, इसका क्या मतलब हुआ?'

मुझे विजय की बातें अच्छी नहीं लग रही थीं। मैंने कहा, "आप तो उनके सहकर्मी हैं, उनसे ही पूछें तो बेहतर।"

विजय शायद समझ गया कि मैं उससे बात करना नहीं चाहता। वह चुप हो गया और नूर भोपाली के घर पहुँचने तक चुपचाप गाड़ी चलाता रहा।

नूर का घर एक खुली-खुली और साफ-सुथरी कॉलोनी में था, जिसके मकानों के सामने सड़क के किनारे गुलमोहर के पेड़ लगे हुए थे और इस समय वे लाल फूलों से लदे हुए थे।

नूर का फ्लैट पहली मंजिल पर था। सीढ़ियों से ऊपर जाकर मैंने घंटी बजायी, तो सोलह-सत्रह साल की एक लड़की ने दरवाजा खोला और यह जानकर कि मैं नूर साहब से मिलने आया हूँ, उसने मुझे अंदर आने के लिए कहा। एक कमरे के खुले दरवाजे के पास पहुँचकर उसने जरा ऊँची आवाज में कहा, "दादू, आपसे कोई मिलने आये हैं।"

मैंने एक ही नजर में देख लिया कि कमरा काफी बड़ा है। एक तरफ सोफा-सेट है, दूसरी तरफ अलमारियाँ, तीसरी तरफ बाहर बालकनी में खुलने वाला दरवाजा और

चौथी तरफ एक पलंग, जिस पर लेटे हुए नूर कोई किताब पढ़ रहे हैं। नजरों से ओझल किसी म्यूजिक सिस्टम पर बहुत मंद स्वर में सरोद बज रहा था।

नूर किताब एक तरफ रखकर उठ खड़े हुए। उन्होंने शायद मुझे नहीं पहचाना, इसलिए विजय से कहा, "आइए-आइए, विजय साहब!"

"देखिए, सर, मैं अपने साथ किनको लाया हूँ!" विजय ने आगे बढ़कर कहा।

नूर अचकचाकर मेरी ओर देखने लगे और पहचान जाने पर, "अरे, राजन जी, आप!" कहते हुए मुझसे लिपट गये। गले मिलने के बाद वे मेरा हालचाल पूछते हुए सोफे की ओर बढ़े और मुझे अपने सामने बिठाकर पूछने लगे कि मैं कब और किस सिलसिले में भोपाल आया। मैंने बताया, तो बोले, "आप सवेरे ही किसी से मुझे फोन करवा देते, मैं खुद आपसे मिलने आ जाता।"

मैंने देखा, बीच में बीते समय ने उन्हें खूब प्रभावित किया है। पहले जब मैं उनसे मिला था, वे अधेड़ होकर भी जवान लगते थे। अब एकदम बूढ़े दिखायी दे रहे थे। लगभग सफेद होते हुए लंबे और बिखरे-बिखरे बाल, कुछ कम सफेद दाढ़ी और आँखों पर मोटे काँच का चश्मा। पहले दाढ़ी नहीं रखते थे और चश्मा नहीं लगाते थे। अगर पहले से पता न होता, तो शायद मैं उन्हें पहचान न पाता।

विजय को भी बैठने के लिए कहते हुए उन्होंने कहा, "बहुत-बहुत शुक्रिया, विजय साहब, कि आप इनको ले आये। हम दूसरी ही बार मिल रहे हैं, लेकिन पुराने प्रेमी हैं। लव एट फर्स्ट साइट वाले!" कहकर वे हँसे।

मैंने देखा, नीचे खड़ा गुलमोहर का पेड़ उनकी बालकनी तक बढ़ आया है और उसके लाल फूल बिलकुल नजदीक से दिखायी दे रहे हैं। शाम की हल्की धूप में खूब चटक चमकते हुए।

"अकेले ही आये हैं या परिवार के साथ?' नूर ने मुझसे कहा, "पिछली बार जब आप आये थे, आपने कहा था कि भोपाल बहुत खूबसूरत शहर है, अगली बार आयेंगे तो परिवार के साथ आयेंगे।"

मुझे आश्चर्य हुआ कि उन्हें यह बात इतने साल बाद भी याद है। मैंने कहा, "अब परिवार के साथ निकलना मुश्किल है। पत्नी की नौकरी है और बच्चे बड़े हो गये हैं। सबकी अपनी व्यस्तताएँ हैं।" कहते-कहते मुझे नूर के परिवार की याद आ गयी। मैंने

दुख प्रकट करने के लिए कहा, "आपके परिवार के साथ जो हादसा हुआ, उससे बड़ा..."

"हादसा !' नूर जैसे एकदम तड़प उठे। उन्होंने मेरा वाक्य भी पूरा नहीं होने दिया। बोले, "आप उसे हादसा कहते हैं वह तो हत्याकांड था! ब्लडी मैसेकर!"

मैं सहमकर खामोश हो गया और नीचे देखने लगा।

विजय ने नूर को शांत करने की गरज से कहा, "अब उन पुराने जख्मों को कुरेदने से क्या फायदा है, सर?'

"मैं नहीं मानता। हमें उन जख्मों को तब तक कुरेदते रहना चाहिए, जब तक दुनिया में ऐसे हत्याकांड बंद नहीं हो जाते!" नूर ने विजय को झिड़क दिया और मुझसे पूछा, "क्या हादसे और हत्याकांड में कोई फर्क नहीं है? हादसे अचानक हो जाते हैं, जैसे दो रेलगाड़ियाँ टकरा जायें, लेकिन हत्याएँ तो की जाती हैं।"

तभी वह लड़की, जिसने दरवाजा खोला था, काँच के तीन गिलासों में पानी ले आयी। ट्रे को सलीके से मेज पर रखकर उसने नूर से पूछा, "दादू, चाय या शर्बत?'

"पहले शर्बत, फिर चाय।" कहकर नूर ने मुस्कराते हुए मुझसे पूछा, "आपको शुगर-वुगर तो नहीं है न?'

मैंने हँसकर कहा, "अभी तक तो नहीं।"

लड़की जाने लगी, तो नूर ने उसे वापस बुलाया, अपने पास बिठाया और उसके सिर पर हाथ रखकर परिचय कराया, "यह आयशा है। मेरे भतीजे की बेटी। यह अपने दादू का बहुत खयाल रखती है। बी.ए. में पढ़ती है। बहुत समझदार है। और, आयशा, ये हैं आपके दिल्ली वाले दादू राजन जी।"

आयशा ने मुझे सलाम किया और मैंने उसे आशीर्वाद दिया। लेकिन मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ कि न तो नूर ने विजय से उसका परिचय कराया और न उसने ही विजय को सलाम किया। उसने विजय की तरफ देखा भी नहीं। उठकर अंदर चली गयी।

बातचीत शुरू करने के लिए मैंने नूर से पूछा, "सुना है, आपने साहित्यिक कार्यक्रमों में जाना बंद कर दिया है ऐसा क्यों?'

नूर ने एक नजर विजय पर डाली और मुझसे कहा, "वहाँ जो कुछ होता है, मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। अब वहाँ साहित्य नहीं होता, साहित्य से पैसा कमाने, पुरस्कार पाने और खुद को महान साहित्यकार मनवा लेने की तिकड़में होती हैं। किसी से कुछ फायदा हो सकता है, तो उसे खुश करने की और जिससे कुछ नुकसान हो सकता है, उसकी जड़ें खोदने की कोशिशें की जाती हैं। देश और दुनिया में क्या हो रहा है, इसकी जानकारी तो सबको है, जो वहाँ बड़े जोर-शोर से उगली भी जाती है, लेकिन देश-दुनिया के हालात का आम लोगों पर क्या असर पड़ रहा है और उसके बारे में क्या किया जा सकता है, इसकी चिंता किसी को नहीं है। गरीबी और बेरोजगारी बढ़ रही है। समाज में हिंसा बढ़ रही है। अपराध बढ़ रहे हैं। लोग मर रहे हैं और मारे जा रहे हैं। लोगों में जबर्दस्त निराशा फैल रही है। लेकिन साहित्यकार क्या कर रहे हैं वे फूलों और चिड़ियों पर कविताएँ लिख रहे हैं। दलितवाद के नाम पर जातिवाद फैला रहे हैं। स्त्रीवाद के नाम पर सेक्स की कहानियाँ लिख रहे हैं। संप्रदायवाद के नाम पर हिंसा और बलात्कार के ब्यौरे दे रहे हैं। और समझ रहे हैं कि हम बहुत बड़े तीर मार रहे हैं। भोपाल तो साहित्यकारों का गढ़ है। लेकिन चौरासी में यूनियन कार्बाइड ने एक ही झटके में हजारों लोगों को मौत के घाट उतार दिया, हजारों लोगों को अंधा और अपाहिज बना दिया, हजारों परिवारों से उनके मुँह का निवाला छीनकर उन्हें भूखा भिखारी बना दिया, मगर इसके खिलाफ यहाँ के साहित्यकारों ने क्या किया कुछ बयान दिये, कुछ कविताएँ लिखीं और बस! दिन-रात भाषा के खेल खेलने वालों ने यह भी नहीं देखा कि उस बर्बर हत्याकांड को 'भोपाल गैस त्रासदी' जैसा भ्रामक नाम दे दिया गया है, जिससे लगे कि उस भयानक घटना का संबंध सिर्फ गैस से है। जैसे भोपाल के हजारों लोगों को गैस ने ही मार डाला हो। या जैसे गैस का फैलना भूचाल जैसी कोई प्राकृतिक घटना हो, जिसके लिए किसी को जिम्मेदार न ठहराया जा सकता हो! त्रासदी...माइ फुट!"

नूर ने हिंदी में और धीरे-धीरे बोलना शुरू किया था, लेकिन दो-चार वाक्यों के बाद ही वे उत्तेजित होकर अंग्रेजी में, तेज-तेज और जोर-जोर से बोलने लगे थे। अंततः उनकी साँस फूल गयी और वे चुप हो गये।

मेरे साथ आये विजय को शायद यह लगा कि नूर ने भोपाल के साहित्यकारों का और व्यक्तिगत रूप से उसका अपमान किया है। नूर के चुप होते ही उसने व्यंग्यपूर्वक कहा, "आपका तो यह जिया-भोगा सत्य था, आपने इस पर क्यों कुछ नहीं लिखा?'

नूर ने जलती-सी आँखों से विजय की ओर देखा, लेकिन तत्काल ही स्वयं को संयत कर लिया। एक सिगरेट सुलगायी और गहरा कश लेकर ढेर-सा धुआँ छोड़ने के बाद शांत स्वर में विजय से कहा, "आप जानते हैं, मैं शायर हूँ, गद्य नहीं लिखता। मैंने गजल के सिवा और कुछ लिखना सीखा ही नहीं। लेकिन गजल में उस सबको बयान नहीं किया जा सकता, जो मैंने जिया और भोगा है। मैंने सिर्फ जिया और भोगा ही नहीं है, बहुत कुछ जाना और सोचा-समझा भी है। मैंने गजल में उस सबको कहने की कोशिश की और सैकड़ों शेर लिख डाले। मगर मुझे लगा, बेकार है। फिर मैंने गद्य में लिखने की कोशिश की। आत्मकथा के रूप में ढेरों कागज काले किये। लेकिन बात नहीं बनी। कहानी भी लिखने की कोशिश की, लेकिन लगा कि कहानी में वह सब नहीं कहा जा सकता, जो मैं कहना चाहता हूँ। तब लगा कि उपन्यास लिखूँ, तो शायद कुछ बात बने। मगर उपन्यास लिखना मुझे आता नहीं। कहीं वह निबंध जैसा हो जाता है, तो कहीं भाषण जैसा। लिखता हूँ और फाड़कर फेंक देता हूँ। कभी कागज-कलम लेकर बैठता हूँ और बैठा ही रह जाता हूँ। सामने रखा कोरा कागज मुझे चिढ़ाता रहता है, मेरी तरफ चुनौतियाँ फेंकता रहता है, लेकिन मैं उस पर एक शब्द भी लिख नहीं पाता। दिमाग में एक साथ इतनी सारी बातें आती हैं कि मैं समझ नहीं पाता, क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ। फिर मुझे डर लगने लगता है कि मैं कहीं पागल न हो जाऊँ। पागलपन के एक दौर से गुजर चुका हूँ, फिर से गुजरना नहीं चाहता।"

इतने में आयशा शर्बत ले आयी। नींबू की कुछ बूँदें डालकर बनाया गया रूह-अफजा का लाल शर्बत। बिना कुछ बोले उसने शर्बत मेज पर रखा और चली गयी।

"लीजिए, शर्बत लीजिए।" नूर ने कहा और उठकर एक अलमारी में से मोटी-मोटी फाइलों का एक ढेर उठा लाये। उसे मेज पर रखते हुए बोले, "लोग कहते हैं कि मैंने लिखना-पढ़ना बंद कर दिया है। लेकिन मैं बेकार नहीं बैठा हूँ। मैंने इन पंद्रह सालों में उस हत्याकांड के बारे में ढेरों तथ्य जुटाये हैं। इन फाइलों में वे तमाम तथ्य और प्रमाण हैं, जो बताते हैं कि भोपाल में गैस-कांड अचानक नहीं हो गया था।"

उन्होंने शर्बत का एक घूँट पीकर गिलास रख दिया और एक फाइल खोलकर दिखाते हुए बोले, "यह देखिए, ये कागज बताते हैं कि जब यूनियन कार्बाइड ने अपना कारखाना यहाँ लगाने का फैसला किया था, तब कई लोगों ने, हमारी सरकार के कुछ समझदार और जिम्मेदार अधिकारियों ने भी, इसका विरोध किया था। उन्होंने कहा

था कि ऐसी घनी आबादी के पास ऐसा खतरनाक कारखाना नहीं लगाया जाना चाहिए।"

"क्या उन्हें पहले से ही मालूम था कि यह कारखाना खतरनाक होगा, सर?' विजय ने मजाक उड़ाती-सी आवाज में कहा।

नूर ने विजय की तरफ देखा और पूछा, "क्या आप उस जहरीली गैस के बारे में कुछ जानते हैं, जिसने हजारों लोगों की जान ली और अभी तक ले रही है?'

"जी, सर, मैंने उसके बारे में पढ़ा तो था, पर उसका नाम याद नहीं रहा।" विजय झेंप गया।

नूर व्यंग्यपूर्वक मुस्कराये, लेकिन तत्काल गंभीर होकर बताने लगे, "उसे मिक कहते हैं। एम आइ सी मिक। पूरा नाम मिथाइल आइसोसाइनेट। यह कोई प्राकृतिक गैस नहीं है। यह पिछली ही सदी में कारखानों से निकलकर पृथ्वी के पर्यावरण में शामिल हुई है। अब इसका व्यापारिक उत्पादन होता है और इसका इस्तेमाल पेस्टीसाइड्स यानी कीटनाशक बनाने में किया जाता है, जो कीड़े-मकोड़े मारने के काम आते हैं। मिक जिंदा चीजों पर, खास तौर से ऐसी चीजों पर, जिनमें पानी का अंश हो, ऐसी प्रतिक्रिया करती है कि वे तत्काल मर जाती हैं। समझे आप! तो जानकार जानते थे कि यूनियन कार्बाइड कीटनाशक बनाने में इस गैस का इस्तेमाल करने वाली है। यह गैस यहाँ बड़े-बड़े टैंकों में भरकर रखी जायेगी और अगर यह किसी भी तरह से टैंकों से निकलकर फैल गयी, तो आसपास की आबादी के लिए बहुत ही खतरनाक साबित होगी।"

विजय तो नूर की बातों को मुँह बाये सुन ही रहा था, मैं भी चकित था कि एक आदमी, जो शौकिया तौर पर शायर और पेशे से बैंक मैनेजर है, वैज्ञानिक चीजों की इतनी जानकारी रखता है।

नूर कह रहे थे, "आप जानते हैं कि वह गैस पूरे शहर में नहीं, कारखाने के आसपास के ही इलाके में क्यों फैली इसलिए कि मिक अगर खुली छोड़ दी जाये, तो फैल तो जाती है, लेकिन वह हवा से ज्यादा घनी होती है, इसलिए ऊपर उठकर हवा में घुल-मिल नहीं पाती। इसीलिए वह उड़कर दूर तक नहीं जा पाती। नजदीक ही नीचे बैठ जाती है और पानीदार चीजों को जला देती है। इंसान के जिस्म के नाजुक हिस्सों पर, जैसे आँखों और फेफड़ों पर, वह बहुत जल्द और घातक असर करती है।"

कहते-कहते नूर ने फाइल में से एक कागज निकाला और पढ़कर सुनाने लगे, "बीइंग डेंसर दैन एयर, मिक वेपर डज नॉट डिस्सिपेट बट सैटल्स ऑन व्हाटएवर इज नियरबाइ। इफ एक्स्पोज्ड टु वॉटर-बियरिंग टिश्यूज, इट रिएक्ट्स वायोलेंटली, लीडिंग टु चेंजेज दैट कैन नॉट बी कंटेंड बाइ दि नॉर्मल प्रोटेक्टिव डिवाइसेज ऑफ दि अफेक्टेड ऑर्गैनिज्म। दि एमाउंट ऑफ एनर्जी रिलीज्ड बाइ दि एनसुइंग रिएक्शन स्विफ्टली एक्सीड्स दि हीट-बफरिंग कैपेबिलिटीज ऑफ दि बॉडी। सो दि बॉडी सफर्स सीवियर बर्न्स, इस्पेशली ऑफ एक्सपोज्ड टिश्यूज रिच इन वॉटर, सच एज लंग्स एंड आइज।"

नूर ने कागज को पढ़ना बंद करके कहा, "यही वजह थी कि गैस ने कारखाने के आसपास की आबादी में इतनी तबाही मचायी। हजारों लोग मर गये, हजारों अंधे हो गये, हजारों के फेफड़े हमेशा के लिए खराब हो गये।"

उन्होंने आधी जल चुकी सिगरेट से फिर एक गहरा कश लिया, धुआँ छोड़ा और सिगरेट एश ट्रे में बुझा दी। उनकी बात शायद अभी पूरी नहीं हुई थी, इसलिए मैं चुप रहा। नूर फिर बोलने लगे, "तो मैं कह रहा था कि जब यूनियन कार्बाइड ने अपना कारखाना लगाने के लिए घनी आबादी के पास वाली जगह चुनी, तो कुछ समझदार और जिम्मेदार अधिकारियों ने इसका विरोध किया था। उनका कहना था कि यह कारखाना शहर के बाहर लगाया जाना चाहिए। लेकिन यूनियन कार्बाइड ने यह बात नहीं मानी। कहा कि शहर के बाहर कारखाना लगाना उसके लिए बहुत खर्चीला होगा। समझे आप कंपनी को अपना खर्च बचाने की चिंता थी, लोगों की सुरक्षा की उसे कोई चिंता नहीं थी। इस तरह, अगर आप चौरासी के दिसंबर की उस रात यहाँ जो कुछ हुआ, उसे एक हादसा कहते हैं, तो उस हादसे की संभावना या आशंका शुरू से ही थी। यानी एक विदेशी कंपनी और देशी सरकार, दोनों को मालूम था कि वह हादसा कभी भी हो सकता है। फिर भी कंपनी ने उसी जगह कारखाना लगाया और सरकार ने लगाने दिया। इसको आप क्या कहेंगे क्या यह जान-बूझकर हादसों को दावत देना नहीं या कंपनी का खर्च बचाने के लिए जान-बूझकर लोगों को मौत के मुँह में धकेलना नहीं?'

विजय ने मानो कंपनी और सरकार दोनों का बचाव करते हुए कहा, "माफ कीजिए, सर, आपकी बातों से तो ऐसा लगता है कि जैसे यह एक साजिश थी जान-बूझकर लोगों को मार डालने की। लेकिन क्या कोई विदेशी कंपनी किसी दूसरे देश में जाकर ऐसी साजिश कर सकती है? और, क्या उस देश की सरकार जानते-बूझते अपने

लोगों के खिलाफ ऐसी साजिश उसे करने दे सकती है? जहाँ तक खर्च बचाने की बात है, तो वह तो हर उद्योग-व्यापार का नियम है। कंपनी का मकसद ही होता है कम से कम लागत में ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना। इसमें साजिश जैसी क्या बात है?'

मैं अब तक चुप था, लेकिन विजय की बात सुनकर मुझे बोलना पड़ा, "कंपनी के दृष्टिकोण से देखें, तो आपकी बात ठीक है, विजय जी! यूनियन कार्बाइड को अपना खर्च बचाना था, लेकिन सरकार तो सख्ती से कह सकती थी कि कारखाना शहर के बाहर लगाना पड़ेगा। उसे तो अपने लोगों की सुरक्षा की चिंता होनी चाहिए थी। उसने क्यों कंपनी की बात मान ली?'

उत्तर दिया नूर ने, "सरकार को लोगों की क्या परवाह! उसे तो यह लगता है कि विदेशी कंपनियाँ आयेंगी, अपनी पूँजी यहाँ लगायेंगी, तभी हमारा विकास होगा। इसलिए वह तो हाथ-पाँव जोड़कर उन्हें बुलाती है - आइए हुजूर, हमारे देश में आकर अपने कारखाने लगाइए। हम आपको बेहद सस्ती जमीनें देंगे, बेहद सस्ते मजदूर और वैज्ञानिक-टेक्नीशियन वगैरह देंगे, कारखाना लगाने के लिए लोहा-लक्कड़, ईंट-सीमेंट, पानी-बिजली भी तकरीबन मुफ्त में मुहैया करायेंगे। सुरक्षा के नियम और श्रम-कानून आपके लिए ढीले कर देंगे। टैक्सों में भारी छूटें और रिआयतें देंगे। और तो और, हम आपको लेबर ट्रबल से भी बचायेंगे। आपकी तरफ कोई आँख भी उठायेगा, तो आँख फुड़वायेगा और अपना सिर तुड़वायेगा। इस काम के लिए हमारी पुलिस है न! आप हमारे जल, जंगल, जमीन और जनों के साथ चाहे जो करें, हमें कोई ऐतराज नहीं होगा। आप आइए तो! हमारे यहाँ आकर अपना कारखाना लगाइए तो!"

"आप लिखिए, नूर भाई! आप बहुत अच्छा उपन्यास लिखेंगे। आपका व्यंग्य तो कमाल का है!" मैंने प्रशंसा और प्रोत्साहन के लहजे में कहा।

लेकिन विजय को शायद यह अच्छा नहीं लगा। उसने नूर से कहा, "लेकिन, सर, उपन्यास लिखने के लिए तो कारखाने की पूरी वर्किंग आपको मालूम होनी चाहिए। फर्स्ट हैंड नॉलेज। उसके अंदर क्या बनता है, कैसे बनता है, लोग कैसे काम करते हैं, वगैरह..."

नूर उसकी बात सुनकर मुस्कराये और बोले, "आप यह बताइए, क्या धरती गोल है?'

"जी जी, हाँ..."

"और वह घूमती भी है?'

"जी, हाँ..."

"क्या आपने उसकी गोलाई को देखा है? उसे घूमते हुए देखा है? यह आपकी फर्स्ट हैंड नॉलेज तो नहीं है न? फिर भी यह सत्य तो है न! इस सत्य को आपने पुस्तकों से, शिक्षकों से या कहीं से भी जाना हो, इससे क्या फर्क पड़ता है?'

एक क्षण रुककर नूर ने अपने सामने रखी फाइलों की तरफ इशारा किया, "इस जानकारी को जमा करने में मैंने पंद्रह साल लगाये हैं। पंद्रह साल! आपको क्या मालूम कि इसके लिए मैंने कितनी लाइब्रेरियों की खाक छानी है, कितनी पुस्तकें और पत्रिकाएँ खरीदकर पढ़ी हैं, कितनी मेहनत से उनमें से नोट्स लिये हैं और कहाँ-कहाँ जाकर किन-किन लोगों से कितनी पूछताछ की है! मैं उन लोगों में से नहीं हूँ, जो भोपाल गैस त्रासदी पर लेख, कविताएँ और कहानियाँ लिखते हैं, लेकिन यह नहीं जानते कि यूनियन कार्बाइड के कारखाने में क्या बनता था। आपने सेविन का नाम सुना है?'

"सेविन!' विजय सकपका गया, "आपका मतलब है हिंदी में सात?'

"जी, नहीं! एस ई वी आइ एन सेविन। यह एक पेस्टीसाइड है। कीटनाशक। इसको बनाने में यूनियन कार्बाइड मिक गैस का इस्तेमाल करती थी। सेविन यूरोप और अमरीका में भी बनाया जाता है, मगर सीधे मिक से नहीं। वहाँ की सरकारें जानती हैं कि मिक कितनी खतरनाक गैस है। इसलिए वहाँ सीधे मिक से सेविन बनाने की इजाजत नहीं है। लेकिन यूनियन कार्बाइड ने भोपाल के अपने कारखाने में सीधे उसी से सेविन बनाना शुरू कर दिया, क्योंकि इस तरह सेविन बनाने में खर्च कम आता था। यह प्रक्रिया यहाँ के लोगों के लिए चाहे जितनी खतरनाक हो, पर कंपनी के लिए कम खर्चीली थी। दूसरी तरह से कहें, तो ज्यादा मुनाफा देने वाली।"

विजय फँस गया था। उसने कुछ कहने के लिए कहा, "लेकिन, सर, विदेशी कंपनियों के पास तो इतनी पूँजी होती है कि वे सारी दुनिया में अपना कारोबार फैला सकें। फिर यूनियन कार्बाइड को अपना खर्च कम करने की इतनी चिंता क्यों थी?'

"यही तो मुख्य बात है!" नूर ने उसे समझाते हुए कहा, "देखिए, कंपनी देशी हो या विदेशी, उसका एकमात्र उद्देश्य होता है ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना। इसके लिए हर कंपनी अपना माल ऊँचे से ऊँचे दाम पर बेचना चाहती है। लेकिन इसमें आड़े

आ जाती हैं दूसरी कंपनियाँ, जिनसे उसे बाजार में प्रतिस्पर्द्धा करनी होती है। उनसे मुकाबला करने के लिए जरूरी हो जाता है कि माल के दाम कम रखे जायें। लेकिन दाम कम रखने से कंपनी का मुनाफा कम हो जाता है। तब कंपनी के सामने मुनाफा बढ़ाने का एक ही रास्ता बचता है - खर्च घटाना। यानी लागत कम से कम लगाना। और यही वह चीज है, जो मल्टीनेशनल कंपनियों को जन्म देती है। मान लीजिए, एक अमरीकी कंपनी अमरीका में ही अपना माल बनाकर बेचना चाहे, तो उसे अमरीकी मानकों के मुताबिक अपना कारखाना बनाना पड़ेगा, वहीं के मानकों के मुताबिक सुरक्षा के इंतजाम करने पड़ेंगे, कर्मचारियों को वहीं के मानकों के मुताबिक तनख्वाहें और दूसरी सुविधाएँ देनी पड़ेंगी और माल की क्वालिटी भी ऐसी रखनी पड़ेगी, जो वहाँ के मानकों पर खरी उतरे। यह सब उसके लिए बहुत खर्चीला होगा और उसका मुनाफा कम हो जायेगा। इसलिए वह कंपनी क्या करती है कि अपना माल अमरीका में न बनाकर किसी गरीब या पिछड़े देश में जाकर बनाती है, जहाँ कारखाना लगाना और चलाना बहुत सस्ता पड़ता है और जहाँ की सरकार पर दबाव डालकर या सरकारी लोगों को घूस देकर वह मनमानी कर सकती है। इस तरह उसका खर्च बहुत कम हो जाता है - यानी मुनाफा बहुत बढ़ जाता है।"

नूर अंग्रेजी में धाराप्रवाह बोलते जा रहे थे। विजय क्या महसूस कर रहा था, मुझे नहीं मालूम, लेकिन मैं अब ऊबने लगा था। मेरे लिए ये कोई नयी बातें नहीं थीं। फिर भी मैं चुपचाप सुन रहा था, तो सिर्फ इसलिए कि ये बातें मुझे उस आदमी के मुँह से सुनने को मिल रही थीं, जो पहले शेरो-शायरी के अलावा कोई बात ही नहीं करता था और गंभीर साहित्यिक चर्चाओं तक से बड़ी जल्दी ऊब जाता था।

अच्छा हुआ कि आयशा चाय ले आयी। चाय की ट्रे मेज पर रखकर और शर्बत के जूठे गिलासों की ट्रे उठाकर ले जाते हुए उसने कहा, "दादू, गर्मागरम पकौड़े भी ला रही हूँ।"

"आप पकौड़े बना लेंगी?' नूर ने ऐसे कहा, जैसे चाहते हों कि आयशा पकौड़े बना ले, पर डरते भी हों कि यह लड़की बना भी पायेगी या नहीं।

"घर में कोई और नहीं है क्या**?'** मैंने चिंतित होकर पूछा।

"इसके माता-पिता बंबई गये हुए हैं।" नूर ने कुछ परेशानी के साथ बताया, "फिलहाल यही घर की मालकिन और बावर्चिन है। आजकल यही मुझे पाल रही है। बिलकुल एक माँ की तरह।"

मैं आयशा के माता-पिता के बारे में कुछ और जानना चाहता था, लेकिन विजय ने बातचीत का रुख मोड़ते हुए नूर से कहा, "सर, उपन्यास लिखने के लिए जरूरी जानकारी तो आपने काफी जुटा ली है, पर उपन्यास की कहानी क्या है?'

मुझे लगा कि शायद अब नूर अपने परिवार के समाप्त हो जाने की करुण कथा सुनायेंगे, या अपने अकेले रह जाने के दुख का वर्णन करेंगे, लेकिन विजय का प्रश्न सुनकर उन्होंने हल्की-सी झुँझलाहट के साथ कहा, "कहानी ही तो सुना रहा हूँ!"

मैंने कहा, "विजय जी का मतलब शायद यह है कि उपन्यास का कथानक क्या है, उसमें किन पात्रों की कहानी कही जायेगी और कैसे।"

इतने में आयशा पकौड़ों की प्लेट और चटनी ले आयी। हमारे साथ-साथ नूर ने भी एक पकौड़ा उठा लिया और उसे कुतरते हुए कहा, "राजन भाई, मैं विकास के नाम पर होने वाले विनाश की कहानी कहना चाहता हूँ। लेकिन कैसे कहूँ, कहाँ से शुरू करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। आप तो कथाकार हैं, मुझे कुछ सुझाइए न!"

विजय ने एक गर्मागरम पकौड़ा पूरा का पूरा अपने मुँह में रख लिया था, जिसे चबाकर निगल जाने में उसे दिक्कत हो रही थी। उसका मुँह जल रहा था, फिर भी वह मेरे कुछ कहने से पहले ही भरे मुँह से बोल पड़ा, "आपके साथ जो घटा-बीता है, वही लिखिए न! राजन जी ने कहीं लिखा है कि लेखक आपबीती को जगबीती और जगबीती को आपबीती बनाकर कहानी लिखता है।" फिर जैसे-तैसे पकौड़ा निगलकर उसने मुझसे पूछा, "क्यों, सर, मुझे ठीक याद है न? आपने यही कहा है न?'

मैंने उत्तर नहीं दिया। उसके प्रश्न को अनसुना करके नूर की ओर ही देखता रहा। नूर को विजय का बीच में टपक पड़ना अच्छा नहीं लगा। अपने मनोभाव को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "विजय साहब, आप तो भोपाल में ही हैं। आपकी सलाह तो मैं लेता ही रहूँगा। राजन भाई दिल्ली से आये हैं और ये उन लेखकों में से नहीं हैं, जो दिल्ली से अक्सर भोपाल आते रहते हैं।"

इसी बीच मुझे एक बात सूझ गयी और मैंने कहा, "नूर भाई, आपको मालूम होगा, यूनियन कार्बाइड ने भोपाल गैस-कांड के बाद अपनी सफाई में एक बयान दिया था?'

"हाँ, मुझे मालूम है। इन फाइलों में से किसी में मैंने उसे सँभालकर रखा भी है।"

"तो मेरा खयाल है, उसी से उपन्यास की शुरुआत करना ठीक रहेगा।"

"मैं ठीक से उसे याद नहीं कर पा रहा हूँ, जरा याद दिलाइए कि उसमें क्या था।"

"उसमें यूनियन कार्बाइड ने इस बात से इनकार नहीं किया कि भोपाल में उसका कारखाना था और उस कारखाने में मिक से कीटनाशक बनाये जाते थे। बल्कि उसने गर्व के साथ कहा कि भोपाल वाला उसका कारखाना तो तीसरी दुनिया के देशों में खाद्य उत्पादन बढ़ाने में सफल हरित क्रांति में सहायक था। कंपनी ने अपनी वेबसाइट के जरिये दुनिया भर को बताया कि उसने भोपाल में अपना कारखाना एक महान मानवीय उद्देश्य के लिए लगाया था। वह उद्देश्य था भारतीय कृषि उत्पादन की रक्षा के लिए कीटनाशक उपलब्ध कराना और उसके साथ ही भारतीय उद्योग और व्यापार को नये तौर-तरीकों से विकसित करके आगे बढ़ाना। कंपनी ने कहा था - हमारा खयाल था कि भारत में हमने जो निवेश किया है, उसे भारतीय लोगों ने पसंद किया है और वहाँ हमारी साख अच्छी बनी है। लेकिन भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को खलनायक समझा जाता है, सो हमें भी समझा गया। हम पर आरोप है कि हमने वहाँ के अपने कारखाने में मिक से सुरक्षा के उपाय नहीं किये। मगर यह आरोप निराधार है। हम तो हमेशा ही सुरक्षा के मानकों का पालन करने के लिए प्रतिबद्ध रहे हैं। हम पर भारत की जनता और वहाँ के संसाधनों का शोषण करने का आरोप भी लगाया जाता है। लेकिन यह आरोप भी निराधार है। हम तो चौरासी में हुई उस त्रासद घटना के दिन से ही वहाँ के लोगों के प्रति करुणा और सहानुभूति से विचलित हैं।"

नूर ने अत्यंत घृणा और क्षोभ के साथ कहा, "कंपनी के दिल में कितनी करुणा और सहानुभूति थी, यह तो हमने मुआवजे के मामले में देख लिया! उसकी करुणा और सहानुभूति उस रासायनिक कचरे के रूप में भी यहाँ पड़ी हुई है, जिससे यहाँ की मिट्टी, पानी और हवा में आज तक प्रदूषण फैल रहा है और लोगों में तरह-तरह की बीमारियाँ पैदा कर रहा है। वह कचरा तमाम तरह के लोगों, संगठनों और संस्थाओं के लगातार हल्ला मचाते रहने पर भी आज तक साफ नहीं किया गया है। करुणा और सहानुभूति! माइ फुट!"

क्षुब्ध नूर कुछ देर चुप रहे, फिर सहसा उन्होंने मेरी ओर विस्मय भरी आँखों से देखते हुए कहा, "कमाल है, आपको तो यूनियन कार्बाइड का वह बयान तकरीबन हू-ब-हू याद है!"

"दरअसल मैं भी गैस-कांड पर कुछ लिखना चाहता था। एक कहानी लिखी भी थी। पता नहीं, वह आपकी नजरों से गुजरी या नहीं।"

"नहीं, मैंने नहीं पढ़ी, लेकिन मैं उसे जरूर पढ़ना चाहूँगा। आप दिल्ली जाकर मुझे उसकी फोटोकॉपी भेज देंगे'

"जरूर।"

"आपने बहुत अच्छा सुझाव दिया है, राजन भाई! मैं अपना उपन्यास कंपनी के उस बयान से ही शुरू करूँगा। लेकिन आपको याद होगा, उसी बयान में कंपनी ने यह भी कहा था कि भोपाल के गैस-कांड के लिए वह जिम्मेदार नहीं है। उसने कहा था कि उस घटना के बाद हमने अपने तौर पर पूरी जाँच की, जिससे पता चला कि यह निश्चित रूप से तोड़-फोड़ की कार्रवाई थी और तोड़-फोड़ हमारे भोपाल कारखाने के किसी कर्मचारी ने ही की थी। उस कर्मचारी ने जान-बूझकर मिथाइल आइसोसाइनेट से भरे हुए टैंक में पानी डाल दिया था। गैस में पानी डाल देने से टैंक फट गया और जहरीली गैस निकल पड़ी। कंपनी ने जोर देकर कहा कि सच यही था, लेकिन यह सच भारत सरकार ने लोगों को अच्छी तरह बताया नहीं। इसलिए भारत सरकार भी दोषी है, जो भोपाल गैस त्रासदी के शिकार लोगों की दुर्दशा से उदासीन है।"

मुझे सहसा याद आया कि 'भोपाल गैस त्रासदी' पद का इस्तेमाल शायद पहली बार यूनियन कार्बाइड के उसी बयान में किया गया था। मैंने यह बात नूर को बतायी, तो उन्होंने कहा, "अक्सर यही होता है। वे अपने विरोध की भाषा भी खुद ही हमें सिखा देते हैं और हम सोचे-समझे बिना उसे सीखकर रट्टू तोते की तरह दोहराते रहते हैं।"

"लेकिन, सर, तोड़-फोड़ की बात तो यहाँ के अखबारों में भी छपी थी। उसमें किसी असंतुष्ट कर्मचारी का हाथ था। हमारे लोगों में यह बड़ी खराबी है कि असंतुष्ट होने पर फौरन तोड़-फोड़ पर उतर आते हैं। यह नहीं सोचते कि इसका नतीजा क्या होगा।"

मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने कहा, "विजय जी, तोड़-फोड़ का आरोप कंपनी ने लगाया जरूर, लेकिन तोड़-फोड़ करने वाले कर्मचारी का नाम कंपनी ने कभी नहीं बताया!"

"बता ही नहीं सकती थी!" नूर उत्तेजित हो उठे, "अगर वाकई ऐसा कोई कर्मचारी होता, तो कंपनी उसे जरूर पकड़ लेती। इतनी बड़ी कंपनी क्या एक गरीब देश के गरीब आदमी को नहीं पकड़ सकती थी उसे पकड़कर वह ठोस सबूत के साथ अदालत में पेश करती - न्यायिक अदालत में ही नहीं, मीडिया के जरिये दुनिया की अदालत में भी - लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। उसने अनुमानों के आधार पर यह नतीजा

निकाला कि ऐसा हो सकता है या ऐसा हुआ होगा। यानी कोरा अंदाजा, कोई ठोस सबूत नहीं।"

कहते-कहते नूर ने एक मोटी-सी फाइल उठायी और उस पर हाथ मारते हुए कहा, "ठोस सबूत यहाँ हैं! कंपनी ने एक झूठी कहानी गढ़कर दुनिया को सुनायी थी। सच्ची कहानी यह है कि न तो कारखाना निर्धारित मानकों के मुताबिक बनाया गया था और न ही उसका रख-रखाव ठीक था। कंपनी ने अपना खर्च बचाने के लिए मिक गैस के टैंकों में कार्बन-स्टील के वॉल्व लगवाये थे, जो तेजाब से गल जाते हैं। फिर, उन टैंकों में जरूरत से ज्यादा गैस भरी जा रही थी, क्योंकि गैस का उत्पादन उसकी खपत से ज्यादा हो रहा था। कंपनी के कीटनाशक उतने नहीं बिक रहे थे, जितने बिकने की उसे उम्मीद थी। कंपनी को घाटा हो रहा था। इसलिए चौरासी के दो साल पहले से ही उसने खर्चों में कटौती करना शुरू कर दिया था, जिसका सीधा असर सुरक्षा के उपायों पर पड़ रहा था। मसलन, कारखाने के कर्मचारी अपने अधिकारी से कहते हैं कि सर, यह पाइप लीक कर रहा है, इसे बदलना पड़ेगा। लेकिन अधिकारी कहता है - बदलने की जरूरत नहीं, पैचअप कर दो। खर्च में कटौती कर्मचारियों की संख्या कम करके भी की गयी। मिक गैस के ऑपरेटर पहले बारह थे। चौरासी तक आते-आते छह रह गये। सुपरवाइजर भी आधे कर दिये गये थे। रात पाली में कोई मेंटेनेंस सुपरवाइजर नहीं रहता था। जैसे रात में उसकी जरूरत ही खत्म हो जाती हो। ऐसे हालात में दुर्घटनाओं का होना तो निश्चित ही था और वे हुईं।"

"दुर्घटनाएँ' विजय, जो अब लगभग अकेला ही पकौड़े खा रहा था, फिर हम दोनों की बातचीत के बीच टपक पड़ा, "दुर्घटना तो एक ही हुई थी न, सर, चौरासी में'

"आप भोपाल में रहते हैं या किसी दूसरी दुनिया में' नूर ने हिकारत के साथ विजय से कहा, "यूनियन कार्बाइड के कारखाने से गैस चौरासी में ही नहीं, पहले भी निकली थी। और क्यों न निकलती उत्पादन ज्यादा और खपत कम होने से कारखाने में गैस बहुत ज्यादा इकट्ठी होती जा रही थी। अमरीका या यूरोप में ऐसा होता, तो कंपनी सरकार को यह बताने को बाध्य होती कि उसके कारखाने में यह गैस जरूरत से ज्यादा इकट्ठी हो गयी है। और वहाँ की सरकार तुरंत कोई कार्रवाई करती, ताकि कोई दुर्घटना न घट जाये। लेकिन यूनियन कार्बाइड को मध्यप्रदेश या भारत सरकार की क्या परवाह थी! उसने ऐसी कोई सूचना सरकार को नहीं दी।"

मुझे इस बात की जानकारी नहीं थी, इसलिए मैंने कहा, "अजीब बात है!"

"अजीब बातें तो बहुत सारी हैं, राजन भाई! सुरक्षा के इंतजामों की कहानी सुनिए। कारखाने के ओवरसियर अपने अधिकारी से कहते हैं कि सर, यहाँ के कर्मचारियों को बेहतर प्रशिक्षण की जरूरत है। मगर अधिकारी कहता है - कम प्रशिक्षण से भी काम चलाया जा सकता है। ओवरसियर कहते हैं - सर, सारे के सारे इंस्ट्रक्शन-मैनुअल अंग्रेजी में हैं और कारखाने के कर्मचारी अंग्रेजी नहीं समझते। लेकिन अधिकारी कहता है - वे अंग्रेजी नहीं समझते, तो तुम उन्हें हिंदी में समझा दो। तुम किस मर्ज की दवा हो एक समय तो ऐसा भी आया कि कर्मचारियों की नियमानुसार होने वाली तरक्की भी रोक दी गयी। कह दिया गया कि कंपनी घाटे में चल रही है, तो तरक्की कैसे दी जा सकती है इसकी वजह से कई लोग, जो दूसरी जगह बेहतर नौकरी पा सकते थे, नौकरी छोड़कर चले गये। लेकिन उनकी जगह नयी नियुक्तियाँ नहीं की गयीं। शायद यह सोचकर कि चलो, अच्छा हुआ, कुछ खर्च बचा! मगर इसका नतीजा क्या हुआ कारखाने में गैस के रख-रखाव की देखभाल करने वाले लोग बहुत कम रह गये। मिसाल के तौर पर, टैंकों में गैस कितनी है, यह बताने के लिए जो इंडीकेटर लगे हुए थे, उनकी रीडिंग कायदे से हर घंटे ली जानी चाहिए थी। पहले ली भी जाती थी, मगर चूँकि कर्मचारी आधे रह गये थे, इसलिए वह रीडिंग हर दो घंटे बाद ली जाने लगी। रात में रीडिंग ली भी जाती थी या नहीं, अल्लाह ही जाने!"

मैंने कहीं पढ़ा था कि चौरासी के चार-पाँच साल पहले से ही कारखाने के कर्मचारी गैस के रिसाव की शिकायत करने लगे थे। इक्यासी में कारखाने की जाँच करने के लिए कुछ अमरीकी विशेषज्ञ बुलाये गये थे। उन्होंने खुद कहा था कि मिक के एक स्टोरेज टैंक में 'रनअवे रिएक्शन' हो सकता है।

मैं उस बात को याद कर रहा था और नूर विजय से कह रहे थे, "विजय साहब, आपको याद नहीं कि सन बयासी के अक्टूबर महीने में क्या हुआ था कारखाने में इतनी गैस लीक हुई थी कि कई कर्मचारियों को अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा था।"

विजय ने प्लेट में पड़े आखिरी पकौड़े को चटनी में सानते हुए पूछा**, "**तो हमारी सरकार क्या कर रही थी**?'**

नूर ने कड़वा-सा मुँह बनाते हुए उत्तर दिया, "हमारी सरकार! उसके पास कारखाने के आसपास होने वाले वायु प्रदूषण को जाँचते रहने की न तो कोई व्यवस्था थी और न उसके लिए जरूरी उपकरण। और जब कर्मचारियों ने संभावित दुर्घटनाओं से बचाव के उपाय न किये जाने का विरोध किया, तो उसे अनसुना कर दिया गया। एक कर्मचारी ने अपना विरोध प्रकट करने के लिए पंद्रह दिनों की भूख हड़ताल की।

लेकिन उसे नौकरी से निकाल दिया गया। कर्मचारियों की सुरक्षा पर होने वाले खर्च में लगातार कटौती की जाती रही और गैस रिसने की छोटी-मोटी घटनाएँ कारखाने के अंदर होती रहीं। चौरासी में जो कुछ हुआ, वह इसी खर्च-कटौती और लापरवाही का नतीजा था।"

विजय फिर कुछ कहने को हुआ, लेकिन नूर ने कहना जारी रखा, "आपको मालूम है, मिक को रिसने से रोकने के लिए उसका मेंटेनेंस टेंपरेचर चार या पाँच डिग्री सेल्सियस रखना जरूरी होता है इसके लिए कारखाने में एक रेफ्रिजरेशन सिस्टम मौजूद था, लेकिन पॉवर का खर्च बचाने के लिए उस सिस्टम को बंद कर दिया गया था और गैस बीस डिग्री सेल्सियस के तापमान पर रखी जा रही थी। फिर, जो टैंक फटा, वह एक सप्ताह से ठीक तरह से काम नहीं कर रहा था। लेकिन उसे ठीक कराने के बजाय अधिकारियों ने उसे उसी हाल में छोड़ दिया और दूसरे टैंकों से काम लेने लगे। इसका ही नतीजा था कि उस टैंक के अंदर प्रेशर कुकर का-सा दबाव बन गया और विस्फोट हो गया।"

नूर ने आँखें बंद कर लीं, जैसे अभी-अभी उन्होंने उस विस्फोट को सुना हो और उससे होने वाली तबाही अपने भीतर के किसी परदे पर देख रहे हों।

"आपने तो पूरी रिसर्च कर रखी है**,** सर**!"** विजय ने आखिरी पकौड़ा खाकर रूमाल से हाथ**-**मुँह पोंछते हुए कहा।

नूर ने अपने प्याले में ठंडी हो चुकी चाय को एक घूँट में खत्म किया और उस भयानक रात के बारे में बताने लगे, जिस रात उनका पूरा परिवार गैस-कांड में मारा गया था, "उस रात जिस टैंक से गैस निकली थी, उसका कार्बन-स्टील वॉल्व गला हुआ पाया गया था, लेकिन उसे ठीक नहीं कराया गया था। इतना ही नहीं, उस टैंक पर लगा हुआ ऑटोमेटिक अलार्म पिछले चार साल से काम नहीं कर रहा था। उसकी जगह एक मैनुअल अलार्म से काम चलाया जा रहा था। यही कारखाना अमरीका में होता, तो क्या वहाँ ऐसी लापरवाही की जा सकती थी? वहाँ ऐसे टैंकों पर एक नहीं, चार-चार अलार्म सिस्टम होते हैं और गैस रिसने का जरा-सा अंदेशा होते ही खतरे की घंटियाँ बजने लगती हैं। लेकिन यहाँ कोई घंटी नहीं बजी। वहाँ के लोगों की हिफाजत जरूरी है, यहाँ के लोग तो कीड़े-मकोड़े हैं न! मरते हैं तो मर जायें! कंपनी की बला से!"

अभी तक नूर किसी वैज्ञानिक की-सी तटस्थता के साथ बोलते आ रहे थे, लेकिन 'कीड़े-मकोड़े' कहते हुए उनका गला रुँध गया और बात पूरी होते-होते उनकी आँखों से आँसू बह निकले।

मैं उन्हें सांत्वना देने के लिए उठा, लेकिन उन्होंने मुझे हाथ के इशारे से रोक दिया और उठकर अपने कमरे से अटैच्ड बाथरूम में जाकर दरवाजा अंदर से बंद कर लिया। मुझे लगा, निश्चय ही वे वहाँ फूट-फूटकर रो रहे होंगे।

"ये कभी कोई उपन्यास नहीं लिख सकते।" विजय ने बाथरूम के बंद दरवाजे की ओर देखते हुए हिकारत के साथ कहा।

"क्यों**'** मैंने कुछ सख्ती से पूछा।

"क्योंकि इनके पास केवल तथ्य और आँकड़े हैं। कहानी कहाँ है?' विजय ने ऐसे कहा, जैसे वह कहानी-कला का मर्मज्ञ हो, "मैं यह उम्मीद कर रहा था कि वे आपको अपने निजी अनुभव सुनायेंगे। लेकिन वे तो अपनी रिसर्च की थीसिस सुनाने बैठ गये। और इनकी थीसिस में है क्या? सिर्फ एक चीज - अमरीका की खाट खड़ी करना! मुसलमान हैं न!"

"क्या मतलब**?'** मुझे उस पर गुस्सा आने लगा।

"अमरीका मुसलमानों को पसंद नहीं करता न**!** वह इन्हें आतंकवादी मानता है। जो कि ये लोग होते भी हैं।**"**

"आपको ऐसी बातें करते शर्म नहीं आती! आप एक निहायत भले इंसान के घर में बैठे हैं, जिसका पूरा परिवार गैस-कांड में मारा जा चुका है। और आप उसे एक मुसलमान और आतंकवादी के रूप में देख रहे हैं आप तो भोपाल में रहते हैं, आपको तो पता ही होगा कि उस गैस-कांड में सिर्फ मुसलमान नहीं, सभी तरह के लोग मारे गये थे। यूनियन कार्बाइड के लिए वे सभी समान रूप से कीड़े-मकोड़े थे।"

"आप तो उनका पक्ष लेंगे ही। आप दोनों जनवादी हैं न!" विजय ने व्यंग्यपूर्वक कहा, "मैं तो यह सोच रहा था कि मुझे कोई अच्छी कहानी सुनने को मिलेगी।"

"अच्छी कहानी से आपका क्या मतलब है**?'** मेरा गुस्सा बढ़ता जा रहा था।

"मैं सोच रहा था, नूर साहब यह बतायेंगे कि परिवार के न रहने पर इन्हें कैसा लगा। अकेले रह जाने पर इन्हें क्या-क्या अनुभव हुए। फिर से घर बसाने का विचार मन में आया कि नहीं आया। और सबसे खास बात यह कि इन पंद्रह सालों में इनकी सेक्सुअल लाइफ क्या रही। सेक्स तो इंसान की बेसिक नीड है न! और यहाँ आप देख ही रहे हैं, दादा अपनी जवान पोती के साथ घर में अकेला मौज कर रहा है!"

"शट अप एंड गेट आउट!" मैंने विजय को तर्जनी हिलाकर आदेश दिया और जब वह नासमझ-सा उठकर खड़ा हो गया, तो मैंने जोर से कहा, "अब आप फौरन यहाँ से चले जाइए! मैं अब आपको एक क्षण भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। जाइए, निकल जाइए!"

"लेकिन मैं तो आपको आपके होटल तक छोड़ने..."

"मेरी चिंता छोड़िए और जाइए।" मैंने शायद कुछ इस तरह कहा कि वह डर गया और अपनी कार की चाबी उठाकर कमरे से निकल गया। थोड़ी देर बाद ही नीचे से मैंने उसकी कार के स्टार्ट होने की आवाज सुनी।

नूर बाथरूम से निकलकर आये, तो उन्होंने पूछा कि विजय कहाँ गया। मैंने उन्हें बता दिया कि वह बकवास कर रहा था, मैंने उसे भगा दिया। नूर इस पर कुछ बोले नहीं, लेकिन मुझे लगा कि उन्होंने राहत की साँस ली है। तभी आयशा पकौड़ों की खाली प्लेट और चाय के खाली प्याले उठाने आयी। उसने मुझसे कहा, "दादू, आपने बहुत अच्छा किया, जो उस बदमाश को भगा दिया। मैं सब सुन रही थी।" वह बहुत गुस्से में थी।

"साहित्यकार बनते हैं, लेकिन समझ और तमीज बिलकुल नहीं।" नूर भी गुस्से में थे।

मैंने उस प्रसंग को वहीं समाप्त करने के लिए कहा, "आयशा बेटी, तुमसे मिलकर बहुत अच्छा लगा। तुम्हारे माता-पिता भी यहाँ होते, तो और अच्छा रहता। मैं उनसे भी मिल लेता।"

"वे दोनों बंबई गये हैं।" नूर ने उदास आवाज में कहा, "वहाँ इसकी माँ का इलाज चल रहा है। उसकी आँखें तो बच गयीं, पर फेफड़े अब भी जख्मी हैं।"

"क्या वह भी...' मैं सिहर-सा गया।

"हाँ, उस रात बदकिस्मती से वह हमारे ही घर पर थी। मैं इंदौर गया हुआ था और मेरी माँ की तबीयत ठीक नहीं थी। आयशा उस वक्त बहुत छोटी थी। डेढ़-दो साल की। इसकी माँ इसे इसकी दादी के पास छोड़कर अकेली ही हमारे यहाँ चली आयी कि शाम तक अपने घर लौट जायेगी। लेकिन मेरी माँ ने उसे रोक लिया कि सुबह चली जाना। और उसी रात वह कांड हो गया। बेचारी वह भी चपेट में आ गयी। आयशा, इसके अब्बू और दादा-दादी बच गये, क्योंकि ये लोग शहर के उस इलाके में रहते थे, जहाँ गैस नहीं पहुँची थी। अब इसे किस्मत कहिए या चमत्कार, मेरे घर में उस रात बाकी सब मर गये, आयशा की माँ बच गयी। लेकिन बस, जिंदा ही बची। बीमार वह अब भी है। उसका इलाज यहाँ ठीक से नहीं हो पा रहा था। बंबई ले जाना पड़ा। वहाँ के इलाज से कुछ फायदा है, सो वहीं का इलाज चल रहा है। महीने में दो बार ले जाना पड़ता है। इतने साल हो गये..."

आयशा जूठे बर्तनों की ट्रे उठाये खड़ी सुन रही थी। आखिर उसने नूर को टोक ही दिया, "दादू, यह क्यों नहीं कहते कि आपने ही मेरी अम्मी को बचा लिया। उनके इलाज पर जितना खर्च हो रहा है, उतना अकेले अब्बू तो कभी न उठा पाते। यों कहिए कि आपने अम्मी को ही नहीं, अब्बू को और मुझे भी बचा लिया।"

"नहीं, बेटा, बात बिलकुल उलटी है। तुम सबने ही मुझे बचा लिया। अकेला तो मैं टूट गया होता। कभी का कब्रिस्तान पहुँच गया होता।"

नूर बहुत भावुक हो आये थे। शायद फिर से रो पड़ते। लेकिन आयशा ने समझदारी दिखायी। बोली, "अच्छा, यह सब छोड़िए, यह बताइए कि खाने के लिए क्या बनाऊँ?'

"यह तो अपने दिल्ली वाले दादू से पूछो।" कहते हुए नूर मुस्कराये।

"नहीं-नहीं, आप तकल्लुफ न करें। मेरे खाने का इंतजाम होटल में है।" मैंने कहा और उठकर खड़ा हो गया, "अब मैं चलूँगा।"

"खाना खाकर जाइए न, दादू! मैं अच्छा बनाती हूँ।"

"वह तो मैं तुम्हारे बनाये पकौड़े चखकर ही जान गया हूँ।" मैंने कहा।

"तो चलिए, मैं आपको छोड़ आऊँ।" नूर भी उठ खड़े हुए, "आयशा बेटा, गाड़ी की चाबी।"

"आप क्यों तकलीफ करते हैं, मैं चला जाऊँगा।"

"वाह, यह कैसे हो सकता है!" नूर ने कहा, "थोड़ी देर बैठिए, मैं कपड़े बदल लूँ।"

आयशा अंदर चली गयी। नूर मेरे सामने ही कपड़े बदलते हुए मुझसे बातें करने लगे, "आप एक जमाने के बाद आये और ऐसे ही चले जा रहे हैं। अभी तो कोई बात ही नहीं हुई। मैंने बेकार की बातों में आपकी शाम बर्बाद कर दी।"

"नहीं, नूर भाई, बिलकुल नहीं। मैं तो कहूँगा कि आपने मेरा भोपाल आना सार्थक कर दिया। सच कहूँ, तो आपसे मिलने से पहले मैं डर रहा था कि कहीं मैं आपको एक टूटे-बिखरे इंसान के रूप में न देखूँ। लेकिन आप तो बड़े जुझारू इंसान हैं। सचमुच एक रचनाकार को जैसा होना चाहिए। मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि एक शायर पंद्रह साल से एक उपन्यास लिखने की तैयारी कर रहा होगा। और वह भी ऐसा उपन्यास!"

बात फिर उपन्यास पर आ गयी, तो नूर फिर जोश में आ गये, "उपन्यास के लिए मसाला तो मैंने बहुत सारा जमा कर लिया है। लेकिन यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि इसे कहानी के रूप में किस तरह ढालूँ। मैं जो कहानी कहना चाहता हूँ, वह किसी एक व्यक्ति की, एक परिवार की, एक शहर की या एक देश की नहीं, बल्कि सारी दुनिया की कहानी होगी। मुझे लगता है, ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में साहित्य को भी ग्लोबल होना पड़ेगा। मगर किस तरह?'

"मैं भी आजकल इसी समस्या से जूझ रहा हूँ।"

"तो कुछ बताइए न, मुझे यह उपन्यास कैसे लिखना चाहिए?'

"नूर भाई, यह मैं कैसे बता सकता हूँ लिखना चाहे जितना सार्वजनिक या वैश्विक हो जाये, अंततः वह एक नितांत व्यक्तिगत काम है। यह तो वह जंगल है, जिसमें से हर किसी को अपना रास्ता खुद ही निकालना पड़ता है।"

"अच्छा, आप उपन्यास का कोई अच्छा-सा नाम तो सुझा सकते हैं?'

"आपने क्या सोचा है'

"मैंने तो 'कीटनाशक' सोचा है। कैसा रहेगा मैं इसे देश के किसानों के उन हालात से भी जोड़ना चाहता हूँ, जो अक्सर कीटनाशक ही खाकर आत्महत्याएँ करते हैं। मैं

उपन्यास में यह दिखाना चाहता हूँ कि आज का पूँजीवाद हमारे जैसे देशों में कैसा विकास कर रहा है और उससे किसानों का कैसा सर्वनाश हो रहा है।"

"तब तो 'कीटनाशक' बहुत अच्छा नाम है। आपके उपन्यास के लिए अभी से बधाई!"

"शुक्रिया!" नूर ने मुस्कराते हुए कहा और चलने के लिए तैयार होकर बोले, "आइए।"

आयशा ने अंदर से आकर उन्हें कार की चाबी दी और मुझे सलाम किया। मैंने आशीर्वाद दिया। उसने फिर आने के लिए कहा, तो मैंने उसे सबके साथ दिल्ली आने का निमंत्रण दिया।

नीचे उतरकर जब मैं नूर की कार में बैठने लगा, तो ऊपर से आयशा की आवाज आयी, "दिल्ली वाले दादू, खुदा हाफिज!"

मैंने सिर उठाकर देखा, आयशा बालकनी में खड़ी हाथ हिलाकर मुझे विदा कर रही थी।

हालाँकि रात हो चुकी थी, फिर भी नूर के फ्लैट की बालकनी तक पहुँचे हुए गुलमोहर के लाल फूल सड़क-बत्तियों की रोशनी में चमक रहे थे।